भाद्र शुक्ल ८, मंगलवार, दिनांक २०-०९-१९७७
कलश-१०४ से १०५, प्रवचन-१००

दशलक्षणी पर्व का चौथा दिन है। शौचधर्म-निर्लोभता। यह शौचधर्म का अर्थ है।

समसंतोसजलेण य जो घोवदि तिह्वलोहमलपुंजुं।
भोयणगिद्धिविहीणो तस्स स उच्चं हवे विमलं॥३९७॥

दस प्रकार के धर्म मुनि की मुख्यता से बात करते हैं न!

अर्थ - जो (धर्मात्मा) मुनि समभाव अर्थात् राग-द्वेष रहित परिणाम और सन्तोष... सन्तोष-शान्ति। इस **जल से तृष्णा तथा लोभरूप मलसमूह को धोते हैं...** आहाहा! तृष्णा (अर्थात्) भविष्य की चाहना और लोभ (अर्थात्) वर्तमान पदार्थ की प्रीति। क्या कहा? तृष्णा और लोभ की व्याख्या भिन्न है। तृष्णा इसको कहते हैं कि भविष्य की चाहना और लोभ इसको कहते हैं कि वर्तमान में भाव। पदार्थ में प्रीति। ये भविष्य की चाहना और वर्तमान में प्रेम का जिसको त्याग है, अन्दर में स्वभाव के सन्तोष में। आहाहा! **भोजन की गृद्धि....** भोजन की गृद्धि। दूसरी चीज़ तो है ही नहीं उनको। तो भोजन की गृद्धि का भी त्याग। आहाहा! **उन मुनि का चित्त निर्मल है...** व्याख्या जरा कड़ी है।

भावार्थ - (समभाव तृष्णा) **तृण कंचन को समान जानना...** तृण हो या सोना हो, दोनों पुद्गल की जड़ पर्याय हैं। दोनों में समान भाव रखना। आहाहा! **तथा सन्तोष-सन्तुष्टपना-तृप्तभाव अर्थात् अपने ही स्वरूप में सुख...** अपने आनन्दस्वरूप में सुख है, उसमें रहना, यह शौचधर्म है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपने आनन्दस्वभाव में सन्तोष से रहना, सुख के स्वाद में रहना। आहाहा! इसका नाम शौच-निर्लोभ धर्म है। ऐसी बात है। आहाहा! **भविष्य में मिलने की चाहनारूप तृष्णा तथा प्राप्त द्रव्यादिक में अति लिप्तपनेरूप लोभ, इसके (ये दोनों के) त्याग में अति खेदरूप मल को धोने से मन पवित्र होता है। मुनि को अन्य त्याग तो होता ही है, परन्तु आहार के ग्रहण में...**

भोजन शब्द आया न! उसके **ग्रहण में भी तीव्र चाहना रखता नहीं, लाभ-अलाभ रस-नीरस में समभाव रखें तो उत्तम शौचधर्म होता है।**

लोभ के चार प्रकार **जीवनलोभ, आरोग्य रखने का लोभ, इन्द्रियाँ निरोग रखने का लोभ तथा उपभोग का लोभ...** पदार्थ को उपभोग करने का लोभ। आहाहा! इन चार प्रकार के लोभ का त्याग। **अपने सम्बन्धी तथा अपने स्वजन-मित्रादि सम्बन्धी ऐसे दोनों के लिये इच्छा, तब उसकी (लोभ की) आठ भेदरूप प्रवृत्ति होती है। जहाँ इस प्रमाण समस्त ही लोभ नहीं होता।** आहाहा! अपने अतीन्द्रिय आनन्द में, शान्ति में रहना। आहाहा! यह अति लोभ रहित सन्तोषपने का धर्म है। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग है। यह शौचधर्म। अब अपना चलता अधिकार।

मुमुक्षु : शरीर स्वस्थ रहे...

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की रक्षा, जीने का लोभ, स्वकुटुम्ब का, अपना शरीर और उपभोग का लोभ। बारम्बार स्त्री आदि भोगना और बारम्बार भोजनादि लेना। आत्मा तो आनन्दस्वरूप है, भगवान! उस आनन्दस्वरूप में निवास करना और परपदार्थ का लोभ हटाना, इसका नाम शौचधर्म है। आहाहा! यह शब्द है, बापू! भाव कोई अलौकिक है। यह अनादि से समझा ही नहीं। मेरी चीज़ आनन्दस्वरूप सुा का धाम है। अब १०५ में आयेगा।

अब यहाँ कहते हैं, कैसा है ज्ञान? **'तदा हि एषां ज्ञानं स्वयं शरणं'** शुभ और अशुभभाव शरणरूप नहीं, वे दु:खरूप हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, नियम, शील, तप, ये सब विकल्प हैं, दु:खरूप हैं। आहाहा! समझ में आया? इनसे रहितपना। **जिस काल में ऐसी प्रतीति आती है कि अशुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं...** आहाहा! अब शुभ उपयोग को मोक्षमार्ग कहते हैं। तो यहाँ कहते हैं कि शुभक्रिया भी मोक्षमार्ग नहीं। ये तो पुण्य है, राग है। आहाहा!

उस काल में निश्चय से मुनिश्वरों को... 'ज्ञानं स्वयं शरणं' शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है। भाषा कही। कोई आलम्बन है या नहीं? पुण्य-पाप के भाव छूटे तो आलम्बन किसका? जो शुभ-अशुभभाव का आलमबन लेकर परिणाम होता है, वह तो छूट गया, तो धर्मी को आलम्बन किसका? आहाहा! शब्द तो ऐसा लिया है,

'**ज्ञानं स्वयं शरणं**' अर्थ ऐसा लिया है, **शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है।** शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही आलम्बन है। आहाहा! इस शब्द में बहुत गम्भीरता है। अपने आनन्दस्वरूप का सहज आलम्बन-आश्रय है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग... व्रत और नियम के सभी क्रियाकाण्ड के विकल्प दुःखरूप हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तो शरण क्या? '**ज्ञानं स्वयं शरणं**' शुद्धस्वरूप का अनुभव। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव का अनुसरण होना, इसमें सहज स्वरूप का आलम्बन है। आहाहा! भाषा अलग, भाव अलग। कहो! **शुद्धस्वरूप का अनुभव सहज ही....** ऐसा शब्द है। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान, ज्ञानस्वरूप भगवान नित्यानन्द प्रभु का अनुभव, उसका अवलम्बन लेकर अनुभव (होना), यह स्वभाविक ही शरण है, स्वभाविक ही शरण है। सहज यह स्वभाव शरण है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? 'ज्ञाने प्रतिचरितं' जो बाह्यरूप परिणमा था... जो शुभ-अशुभ विकार की परिणति में परिणमा था। भगवान ज्ञानस्वरूप... आहाहा! **वही अपने शुद्धस्वरूप परिणमा है।** पुण्य और पाप की पर्याय में जो ज्ञान रूका था, परिणमा था, वह ज्ञान, स्वरूप में परिणमा। आहाहा! है? **शुद्धस्वरूप परिणमा है। शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर कुछ विशेष भी है... 'एते तत्र निरताः परमं अमृतं विन्दन्ति'** आहाहा! **विद्यमान जो सम्यग्दृष्टि मुनिश्वर शुद्धस्वरूप के अनुभव में मग्न हैं... 'निरतः'** आहाहा! रता-निरता। रक्त है, परन्तु निरत है, विशेष मग्न है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है, वह रत-लीन है। मुनि तो '**निरताः**' विशेष रक्त है। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में अपने आनन्द में रत है। मुनि तो '**निरताः**' विशेष रक्त है। आहाहा! ऐसा मार्ग। समझ में आया? आहाहा! मग्न है। '**परमं अमृतं विन्दन्ति**' आहाहा!

कर्ता-कर्म पहले आया था कि जब विकल्प छूट जाते हैं, मैं बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ या शुद्ध हूँ, तब '**अमृतं पिवन्ति**' कर्ता-कर्म में अन्त में आया था। आहाहा! शुभ-अशुभभाव का आश्रय छूटता है तो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का आश्रय लेते हैं। वे अतीन्द्रिय आनन्द में लीन, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को आस्वादते हैं।** देखो!

'**विन्दन्ति**' आस्वादता है। आहाहा! जो कुछ पुण्य की क्रिया में राग का आस्वाद था... आहाहा! वह स्वाद छूटकर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन है। आहाहा! ऐसा मार्ग। ऐसा मार्ग सत्य है। आहाहा! लोगों को निश्चय... निश्चय लगता है। बापू! सत्य ही यह है। आहाहा! यह कहा न?

सर्वोत्कृष्ट... 'परमं अमृतं' 'परमं अमृतं' सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को आस्वादते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी आनन्द का स्वाद शुभाशुभ परिणाम से रहित होता है। तो यहाँ तो मुनि की बात है। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प ये राग दुःख हैं। उससे हटकर ज्ञानानन्दस्वभाव में सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में लीन रहते हैं, आहाहा! उसको आस्वादते हैं। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। किसको मुनि कहना, किसको समकिती कहना! आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है—शुभ-अशुभ क्रिया में मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है,.... देखो! आहाहा! वह तो विकल्पी-रागी प्राणी है। आहाहा! शुभ-अशुभक्रिया में (रहता है), वह तो विकल्पी प्राणी, दुःखी है। आहाहा! विकल्प दुःख है। उसमें आया न, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो उसमें क्या हुआ? पंच महाव्रत के परिणाम दुःख हैं। आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पाया। आहाहा! भगवान आत्मा का अन्तर आश्रय लेकर जो अनुभव होता है, उसमें सुख है। पंच महाव्रत आदि परिणाम तो दुःखरूप है, विकल्प की जाल हैं ये तो। आहाहा! **शुभ-अशुभ क्रिया में मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दुःखी है।** आहाहा! कहो, सेठ! ये तुम्हारे पैसे की तृष्णा में तो दुःख है, परन्तु पंच महाव्रत के विकल्प में दुःखी है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग है न। दया, दान, व्रत, तप, भगवान का स्मरण, पंच परमेष्ठी की भक्ति, यह विकल्प की जाल है। ऐसी बात लोगों को कठिन लगती है। भाई! मार्ग यह है। तेरा मार्ग... अभी आगे कहेंगे। आहाहा! गजब बात है। सन्तों की कथनी 'शान्ति प्राप्त कराये, उसको सन्त कहते हैं, उनके दासानुदास होकर रहें।

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द का धाम। आहाहा! इसमें अतीन्द्रिय सुख का आस्वाद लेना इसका नाम आत्मधर्म, आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मस्थिरता कहते हैं। ऐसी बात। श्रावक के छह कर्तव्य हैं न हमेशा के? स्वाध्याय, पूजा, गुरुसेवा, वह राग हैं, ऐसा

कहते हैं। वह विकल्प की जाल है। समझ में आया? आहाहा! भगवान अन्दर निर्विकल्प वीतराग की मूर्ति प्रभु चिदानन्द आत्मा अनादि-अनन्त वीतरागस्वरूप विराजमान भगवान है। उसका आस्वाद लेना, इससे उसका राग का स्वाद छूट जाता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, शुभभाव (मोक्ष का मार्ग है)। अरे! प्रभु! तू भगवान है न! तेरे में-तेरे घर में तो अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है न! आहाहा!

कहते हैं कि पुण्य-पाप का, **जीव विकल्पी है,...** आहाहा! **इससे दुःखी है।** पंच महाव्रत, पाँच समिति। गुप्ति व्यवहार, इसको लोग अभी सरागचारित्र कहते हैं। कहाँ सराग था? वीतराग बिना? समझ में आया? और ये सरागचारित्र से वीतरागचारित्र होता है, ऐसा कल आया था। आहाहा! ये दुःख की दशा से आनन्द की दशा प्रगट होगी, नहीं? ऐसा नहीं। छोड़कर होगी। आहाहा! **क्रियासंस्कार छूटकर...** क्या कहा? देखो! यह दया, दान, व्रत, तप के विकल्प के संस्कार छूटकर **शुद्धस्वरूप का अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है,...** आहाहा! समझ में आया? कितनी स्पष्ट वस्तु है। अब इसमें से गड़बड़ करता है। अरेरे! भगवान! तेरी चीज़ में पर का आलम्बन बिल्कुल नहीं। तेरी चीज में जाने में पर का, शुभराग का बिल्कुल आलम्बन नहीं। तो उससे निश्चयचारित्र होगा, ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा! वस्तु **जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है।** है? जीव तो भगवान निर्विकल्प वीतरागस्वरूप है। उसके आश्रय से सुखी है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्रिया संस्कार?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया संस्कार ये राग। दया, दान, व्रत, पूजा और भक्ति के नामस्मरण की क्रिया के संस्कार, ये राग के संस्कार हैं। वीतराग न हो, तब तक धर्मी को ये आता है। परन्तु है विकल्प और राग। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग। १०४ हुआ, १०५।

कलश-१०५

(शिखरिणी)

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमलचमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।।6-105।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवस्य हेतुः' [यत् एतत्] जो कोई [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण ऐसा [भवनं] सत्त्वस्वरूप वस्तु [ध्रुवं अचलं] निश्चय से स्थिर होकर [अभाति] प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है [अयं] यही [शिवस्य हेतुः] मोक्ष का मार्ग है। किस कारण से? 'यतः स्वयं अपि तत् शिव इति' [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [तच्छिव इति] मोक्षरूप है। भावार्थ इस प्रकार है-जीव का स्वरूप सदा कर्म से मुक्त है, उसको अनुभवने पर मोक्ष होता है ऐसा घटता है, विरुद्ध तो नहीं। 'अतः अन्यत् बन्धस्य हेतुः' [अतः] शुद्धस्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके बिना [अन्यत्] जो कुछ है शुभ क्रियारूप, अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार [बन्धस्य हेतुः] वह सब बन्ध का मार्ग है; 'यतः स्वयं अपि बन्ध इति' [यतः] जिस कारण [स्वयं अपि] अपने आप भी [बन्ध इति] सर्व ही बन्धरूप है। 'ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूतिः' [ततः] तिस कारण [तत्] पूर्वोक्त [ज्ञानात्मा] चेतनालक्षण, ऐसा है [स्वं भवनं] अपना जीव का सत्त्व [विहितम्] मोक्षमार्ग है, [हि] निश्चय से [अनुभूतिः] प्रत्यक्षपने आस्वाद किया होता हुआ।।6-105।।

कलश - १०५ पर प्रवचन

यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमलचमाभाति भवनं
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।

अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।।6-105।।

आहाहा! भगवान ने तो अनुभव का उपदेश दिया है। महाव्रत और राग और इसको करना, ऐसा उपदेश किया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवस्य हेतुः**' इसमें थोड़ी गम्भीर चीज़ है, देखो! **जो कोई चेतनालक्षण...** ऐसा भगवान। '**भवनं**' **सत्त्वस्वरूप वस्तु...** चेतना लक्षण सत्त्वस्वरूप वस्तु, यह अपना भवन है-यह अपना घर है। आहाहा! पुण्य-पाप अपना घर नहीं। **चेतनालक्षण ऐसा...** '**भवनं**' यहाँ वस्तु सत्त्वस्वरूप वस्तु कही अथवा सत्त्वस्वरूप का परिणमन। परन्तु वह '**भवनं**' यहाँ वस्तु सत्त्वस्वरूप वस्तु कही अथवा सत्त्वस्वरूप का परिणमन। परन्तु वह '**भवनं**' अर्थात् ये चेतना लक्षण भवन है। इसका चेतनास्वरूप उसका घर-स्थान है। रागादि बाह्यस्थान व्यभिचार हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप ये तेरा घर है-गृह है, भवन है, यह तेरा महल है। आहाहा! शान्तिभाई! यह घर तो धूल का है। चालीस-चालीस लाख के मकान, ये सेठ का छह-छह लाख के। गोवा में चालीस-चालीस लाख के। पोपटभाई नहीं, नहीं? गये। धूल में ये तेरा भवन नहीं। बापू! ये तो नहीं, परन्तु राग भी तेरा भवन नहीं। दया, दान, व्रत के संस्कार, वह भी तेरा घर नहीं। वह तेरा घर नहीं। आहाहा! यह कहते हैं न कि ये हमारी घरवाली! हमारे घर से है ये। ऐसे हाथ बताता है। ये हमारे घर से है। ऐसा कहता है। यहाँ घर कहाँ आया? आहाहा! अरे! भगवान! बाई कहे, ये हमारा घरवाला है। ऐसे कहे। मीठी भाषा से कहे तो हमारा पतिदेव है। ऐसा सुना है, अपन को कहाँ यहाँ... पतिदेव कहे। पतिदेव है मेरा। वह कहे, मेरी पत्नी है, अर्धांगिनी है। अरे! भगवान! तेरा आधा अंग वहाँ कहाँ आया? राग में भी तेरा अर्धांगिना नहीं आया, तो स्वरूप सिवाय है कहाँ? आहाहा!

संस्कृत टीका में ये अर्थ किया है। '**भवनं**' गृह-स्थान। आत्मा का भवन स्थान अन्दर स्वरूप है। आहाहा! ऐ... पोपटभाई! आहाहा! कहते हैं, तेरा भवन क्या? उसमें नहीं आता? 'मोक्षमहल की पहली सीढ़ी' पण्डितजी! छहढाला में। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। आहाहा! निज भगवान आनन्द, ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह अपना भवन है।

उस भवन में रहना ये धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! यहाँ तो बाह्य की क्रिया लाभ करे, वहाँ बस प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाये)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **जो कोई...** ज्ञानस्वरूप। '**ज्ञानात्मा**' शब्द पड़ा है न? ज्ञानस्वरूप अर्थात् **चेतनलक्षण...** ज्ञानस्वभाव ऐसा निजघर, निज वस्तु। है न? सत्त्व स्वरूप वस्तु कही। निजघर, निजधाम, निजस्थान। आहाहा!

वह आता है न? रहनेवाले का स्थान है। निर्जरा-अधिकार में आता है। जिसको अन्तर में रहना हो ये रहनेवाले का स्थान भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसी बात सुनते, ये फिर नया होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नया नहीं, बापू! यह तो कल आया था न? अनादि परम्परा से ऐसा उपदेश है। कल आया था। १०३। आहाहा! अनादि-अनन्त तीर्थंकर अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में हैं और भविष्य में अनन्त होंगे, अनन्त केवली हुए, हैं और होंगे, अनन्त मुनि हुए, हैं और होंगे। सबका यह उपदेश है। प्रभु! तेरे घर में तू जा। पर घर में व्यभिचारी होकर तू न रह। आहाहा! शुभभाव में जाना प्रभु! तेरा व्यभिचार है। क्योंकि वह संयोगी भाव है, स्वभावभाव नहीं। आहा! ऐसा कठिन पड़े। समझ में आया? शास्त्र की भक्ति और पूजा, ये शुभभाव राग संसार है, विकल्प है, दुःख है, यह तेरा घर नहीं। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

भगवान! तू तो आनन्दस्वरूप है न! चेतना, चेतन, चेतनास्वभाव से भरा हुआ है न! ज्ञानस्वरूप अर्थात् ये। चेतन, चेतनास्वभाव से भरपूर भरा है न! भगवान! तेरा घर तो यह है न! आहाहा! अरे! ऐसी बात! जहाँ श्रीमद् में ऐसा कहते थे, बात हमारी निश्चय, परन्तु इसका साधन? अरे! भगवान! ऐसा कि ये भक्ति करना न (ये साधन)। बापू! ये तो विकल्प की जाल, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ तो निर्विकल्प वीतरागी पदार्थ है। उस निर्विकल्प पदार्थ में '**भवनं**' निर्विकल्पपने होना, निर्विकल्पपने रहना, निर्विकल्प घर में स्थान रखना। आहाहा! निर्विकल्प चीज में-वस्तु में बसना। क्या कहलाता है? वास्तु। वस्तु में वास्तु करना। वास्तु कहते हैं न? वास्तु नहीं कहते? मकान बनाये इसको। वास्तु लेते हैं। बड़े-बड़े आदमियों को बुलाते हैं और बाद में हलवा बनाते हैं, अरबी के पत्तों की भजिया (बनाते हैं)। आहाहा! वास्तु की पाप में। यहाँ पुण्य परिणाम

में वास्तु, वह भी व्यभिचार है। भगवान! तेरी चीज़ नहीं, तेरा घर नहीं, तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! आहाहा!

'**ज्ञानात्मा भवनं**' ज्ञानस्वरूप होना, रहना, परिणमना और ज्ञानस्वरूप अर्थात् त्रिकाली ज्ञानस्वरूप। ये त्रिकाली। ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें रहना। यह भवन हुआ—यह परिणमन हुआ। राग में रहना, यह विकार का परिणमन हुआ। और ज्ञानानन्द स्वभाव में रहना, यह निर्विकारी परिणमन हुआ। ये घर का घर हुआ। आहाहा! समझ में आया? दो शब्द है। '**भवनं**' पहली लाईन में है और चौथी लाईन में '**भवनं**' है। चौथी लाईन है न? '**भवनमनुभूतिर्हि विहितम्**' आहाहा! कभी सुना नहीं। शान्तिभाई! बेचारे लोगों को लोगों ने मार डाला। आहाहा! 'श्रीमद् कहते हैं, लोग पाप में (रचे-पचे हैं) पूरे दिन स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, भोग, खाना, पीना, ऊँघना, सोना। एकाध घण्टा मिले तो जाये सुनने। कुगुरु इसका घण्टा (समय) लूट लेते हैं। उसे पुण्य में धर्म मनवाकर उसकी जिन्दगी लूट लेते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह पुण्य-पाप का अधिकार है। शुभ-अशुभभाव दोनों विकल्प हैं, दोनों दुःख हैं। क्रिया के संस्कार हैं, ये आत्मा के संस्कार नहीं। आहाहा! यह आत्मा की क्रिया नहीं। यह निर्विकल्प नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु है, बापू! महा अलौकिक बात है, भाई! तू तो भगवान है न, नाथ! तेरी लक्ष्मी में तो आनन्द और ज्ञान पड़ा है न! उस तेरी लक्ष्मी में भवन-वास करना। आहाहा! ये वास्तु करना, वास करना, ये धर्म है। धर्मी आत्मा का धर्म चेतना और आनन्द, उसमें वास करना, ये पर्याय धर्म है। आहाहा! क्या कहा ये?

धर्मी ऐसा द्रव्य, उसमें ज्ञान और आनन्द उसका स्वभाव, उसमें बसना, ये पर्याय धर्म है। आहाहा! गजब बात है! लोगों को तो ऐसा (होता है)। ऐ... सोनगढ़वालों ने ये काम किया। प्रभु! सुन न, नाथ! सोनगढ़ अर्थात् सोनगढ़ सोनगढ़ रहा। सोने को जंग नहीं होती, प्रभु! सोने को जंग लगे? काट को क्या कहते हैं? जंग... जंग। सोने को लगे नहीं। भगवान आनन्दस्वरूप, उसमें राग की जंग नहीं, प्रभु! आहाहा! आहाहा! लोहे को जंग होती है। सोने को नहीं होती। आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा... भाषा तो देखो!

'**ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं**' आहाहा! गजब है! प्रभु तू कैसा है? ज्ञानस्वरूप है

न। पुण्य-पाप के भाव, ये कहीं ज्ञानस्वरूप नहीं, ये तो विकृत स्वरूप, संयोगी विकृतभाव है। आहाहा! व्यभिचार भाव है। ये तेरे रहने के लिये रहने का स्थान नहीं। आहाहा! प्रभु! तेरे रहने के लिये रहने का स्थान तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! ये सब बाहर का धमाल। चमक... चमक। श्मशान की हड्डियों की सब बाहर की चमक है। शरीर रूपवान धूल है। सुन तो। अन्दर पाप के परिणाम ये दुःख और पुण्य परिणाम दुःख हैं। वह तेरी चमक कहाँ है? तेरे चैतन्य चमत्कारिक चमत्कार, चमक आनन्द की लहर, वह तेरी चमक है। आहाहा! अरे! कहाँ... अब वस्तु की खबर भी न मिले। आहाहा!

'ज्ञानात्मा भवनं' सत्त्वस्वरूप वस्तु... वह सत्त्वस्वरूप। ज्ञान सत्त्व, ज्ञान सत्त्वस्वरूप वस्तु। **'ध्रुवं अचलं' निश्चय से स्थिर होकर... 'आभाति' प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है...** आहाहा! निश्चय से अन्तर में एकाग्र होकर **प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है...** आहाहा! ये आनन्द का स्वाद दूसरे लेते हैं और उसको (खबर नहीं पड़ती - ऐसा नहीं)। प्रत्यक्ष आस्वादक कहा है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ज्ञानस्वरूप में **'आभाति'** एकाग्र होकर तेरे को आनन्द के स्वाद को आस्वाद कहा है। उस आनन्द का आस्वाद लेनेवाला तेरे को कहा है। आस्वादक है न? आस्वादक। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेनेवाला तुझको कहा है। राग का स्वाद लेनेवाला आत्मा, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें।

यह राग का संस्कार, क्रियाकाण्ड के संस्कार से पार प्रभु विराजता है अन्दर। आहाहा! निर्विकल्परूप से विराजता है, वीतरागी आनन्द से विराजता है। इस तरफ का भवन अर्थात् अन्दर जाना, उस महल में अन्दर जाना। आहाहा! वह साफ महल है, आनन्द के स्वरूप से साफ महल है। निर्मलानन्द महल है। आहाहा! उसका आस्वादक कहा है। धर्मी को तो उसको आस्वाद करनेवाला कहा है। राग का आस्वाद करनेवाले धर्मी को भगवान ने कहा नहीं। अरे रे! कहो, कान्तिभाई! ऐसा क्या, पैसा-बैसा का इसमें क्या आया? पैसा में दान का भाव हो तो वह शुभभाव है। वह भी व्यभिचार है, ऐसा कहते हैं। अरर! क्रिया संस्कार। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि यह ज्ञानसत्त्व स्वरूप वस्तु है। सत् वस्तु। जिसमें

आनन्द और ज्ञान और शान्ति और स्वच्छता की प्रभुता का कस पड़ा है। उस वस्तु में निश्चय से स्थिर होकर। इसमें रहने से प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक, आस्वादक-आस्वाद करनेवाला कहा है। आहाहा! राग को करनेवाला आत्मा, ऐसा यहाँ कहा ही नहीं। मीठाभाई! ऐसी बातें लोगों को लगे। क्या करें? भाई! 'अनुभव रत्न चिन्तामणि अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप' ये यहाँ निर्विकल्प आस्वाद करनेवाला ज्ञानी को कहा है। आहाहा! एक-एक पंक्ति एक-एक लाईन... आहाहा!

गम्भीर स्वभाव से भरा है। प्रभु! तेरी गम्भीरता का अन्दर पार नहीं तो उसको बतानेवाली वाणी में भी गम्भीरता है। श्रीमद् कहते हैं न? 'वचनामृत वीतराग के, वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भावरोग की पण कायर को प्रतिकूल, रे गुणवन्ता ज्ञानी अमृतवर्षा रे पंचम काल में।' आहाहा! नाथ! तूने तो पंचम काल में अमृत बरसाया! ये अमृत, हों! आहाहा! ज्ञानामृत, आहाहा! वचनामृत वीतराग के। भाषा क्या की? वचनामृत। 'वचनामृत वीतराग के, परम शान्त रसमूल, जिसमें से शान्ति प्रगट हो, ऐसे वीतरागी वचन हैं। राग तो अशान्ति है। राग के संस्कार दुःख हैं। आहाहा!

अरे! लोगों को एकान्त लगता है। हाँ, यह सम्यक् एकान्त है। समझ में आया? इसमें राग के संस्कार का अभाव है, यह अनेकान्त है। आहाहा! श्रीमद् भी कहते हैं, अनेकान्त मार्ग भी सम्यक् संस्कार ऐसे निजपद की प्राप्ति सिवाय अन्य हेतु से उपकारी नहीं। आहाहा! अनेकान्त भी निजपद की एकान्त प्राप्ति के सिवाय अनेकान्त भी दूसरे प्रकार से हितकारी नहीं। आहाहा! अपना सम्यक् एकान्त में आनन्द में आना। आहाहा! अरे! भाव की हाँ तो पाड़, प्रभु! हाँ पाड़ते तेरी हालत हो जायेगी। समझ में आया? हाँ की लत पाड़ते-पाड़ते हालत हो जायेगी। आहाहा!

निश्चय से स्थिर होकर प्रत्यक्षरूप स्वरूप का आस्वादक... प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वादक कहा है। आस्वादक। प्रत्यक्षरूप से स्वरूप का आस्वाद करनेवाला कहा है। आहाहा! ऐसा कि कुछ करता है या नहीं? पुण्य-पाप के भाव छूटे तो कुछ करता है या नहीं? कि आस्वादक कहा है। यह आनन्द का आस्वाद करनेवाला कहा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक पंक्ति में कितना भरा है! आहाहा! दिगम्बर सन्तों

की वाणी तो देखो!

मुमुक्षु : ब्रह्माण्ड के भाव भरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्माण्ड के भाव भरे हैं। समयसार ग्रन्थाधिराज तारामां भाव ब्रह्माण्ड के भरे हैं। आहाहा!

यही मोक्ष का मार्ग है। स्वरूप में एकाग्रता होना और आनन्द का आस्वाद लेना, यही एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अब लोग चिल्लाहट मचाते हैं, ये सब (ठीक) परन्तु साधन क्या? ये ही साधन है। साधन नाम का—करण नाम का आत्मा में गुण पड़ा है। करणशक्ति अपनी आ गयी। शक्ति... शक्ति। करणशक्ति पड़ी है। उसमें करण नाम का गुण पड़ा है। यही करण-साधन है। आहाहा! एकान्त हो जाता है, एकान्त हो जाता है, भगवान! सम्यक् एकान्त हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

अरे रे! देखो न यह स्थिति! शरीर में रोग होता है, पक्षघात होता है। पच्चीस-पच्चीस वर्ष की उम्र, तीस, तीस वर्ष की उम्र में पक्षघात हो जाता है। आहाहा! चल सके नहीं, बोल सके नहीं। निराधार। एक बार पक्षघात कर न! राग का पक्ष घात कर दे न! राग का पक्ष का घात कर दे न। एक अंग-पर खराब हो जायेगा, तेरा स्वअंग रहेगा। आहाहा! समझ में आया?

शिव—**मोक्ष का मार्ग है। 'शिवस्य हेतुः'** है न? शिव अर्थात् मोक्ष। परमानन्दरूपी मोक्ष, उसका हेतु यह। प्रत्यक्षरूप से स्वरूप के आस्वाद करनेवाले को कहा है। आहाहा! अभी तो वस्तु की खबर ही नहीं मिले। सच्चा ज्ञान भी नहीं मिलता, वह भटकने का रास्ता मिलता है। आहाहा! भवाब्धि बड़ा दरिया-समुद्र है। भ्रमणा में राग के संस्कार से धर्म होगा बाद में सुख के साधन मिलेंगे, ऐसा कहते हैं। अभी पुण्य होगा, अनुकूल साधन मिलेंगे। यह पहले आ गया है। यह मिले, बाद में धर्म पायेंगे। अरे! धूल में नहीं मिले, सुन न! आहाहा! धर्म तो तेरी चीज़ में भरा हुआ स्वभाव है, उसका आस्वाद लेनेवाला (को धर्म है)। आहाहा! ऐसा कैसे लिया? राग का आस्वाद तो तुझे अनादि का है। वह कोई चीज़ नहीं। तेरी वस्तु का सत्व नहीं, तेरी वस्तु का वह स्वभाव नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान, इस तरफ का आस्वाद करनेवाले को शिव का—मोक्ष का हेतु

(कारण) कहा है। ऐसा मार्ग है, बापू! वाद-विवाद से पार नहीं पड़ेगी। शास्त्र में व्यवहार की चर्चा बहुत आती है। परन्तु बापू! इसका फल संसार है। जिनाज्ञा में भी वह निमित्तिरूप व्यवहार कहा, परन्तु उसका फल संसार है, शिव हेतु नहीं। समझ में आया? आहाहा!

किस कारण से? मोक्ष का मार्ग है। किस कारण से? निज स्वभाव का अनुभव करना-स्वाद लेना, ये मोक्ष का कारण। किस कारण से? '**यतः स्वयं अपि तत् शिव इति**' भाषा देखो! **जिस कारण अपने आप भी मोक्षरूप है।** यह स्वभाव का वेदन मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप द्रव्य है और उसका वेदन भी मोक्षस्वरूप है। आहाहा! ऐसी बात है। मफाभाई! इन सब सेठियाओं ने ऐसे के ऐसे सब वर्ष गँवाये। निवृत्ति ली थोड़ी। नहीं? सेठ! यह तो अनादि से सब जीवों ने ऐसा किया है और बाहर की बातें प्रिय लगती हैं। प्रवृत्ति और इसमें धर्म। आहाहा! अरे! भगवान! तेरा स्वभाव है, उसमें प्रवृत्ति कर न! राग से निवृत्ति कर न! आहाहा! राग से निवृत्ति और स्वरूप में प्रवृत्ति। आहाहा!

मोक्षरूप है। किस कारण से? कैसे? ज्ञानस्वभाव का आस्वाद लेना, यह मोक्ष का हेतु, कारण क्या? क्योंकि ये स्वयं मोक्षस्वरूप है। राग के बन्धन से रहित आस्वाद, वह मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप है, वह मोक्ष का कारण होगा। बन्धस्वरूप हो, वह मोक्ष का कारण कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! झगड़ा करे, बाधा खड़ी करे। '**स्वयं अपि तत् शिव इति' अपने आप भी मोक्षरूप है।** कौन? भगवान आत्मा मुक्त अबद्धस्वरूप है तो अबद्धस्वरूप के आश्रय जो परिणाम होता है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! क्योंकि मोक्षस्वरूप है, उसका आश्रय लिया है, स्वाद लिया है। आहाहा! भगवान त्रिकाली अबद्धस्वरूप मोक्षस्वरूप है। इस कारण उसका आस्वाद मुक्ति का कारण है। समझ में आया? और ये आस्वाद स्वयं मोक्षस्वरूप है। अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव मोक्षस्वरूप कहा न? 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप' रसकूप— आनन्द का कूप... क्या कहलाता है ये? शीशो... शीशो... शीशा नहीं यह काँच का। कूप... कूप। 'अनुभव है रसकूप, अनुभव, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।' लो, मोक्ष का मार्ग कहकर इसको मोक्षस्वरूप कहा। है? अरे! इसके घर में क्या चीज़ है और घर में बसने से क्या होता है? घर में वास्तु लेने से आनन्द होता है, कहते हैं। परघर में वास्तु

लेने से तो तुझे प्रभु! दुःख होगा। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है - जीव का स्वरूप सदा कर्म से मुक्त है... देखो! जीव का स्वरूप ज्ञायकस्वरूप सदा कर्म से और राग से मुक्त है। **उसके अनुभवने पर मोक्ष होता है...** मोक्षस्वरूप है, उसको अनुभवते मोक्ष होता है। आहाहा! समझ में आया? बात आ गयी, बहुत अच्छी आई है। पुण्य-पाप अधिकार। बहुत गड़बड़ चलती है। प्रभु! तुझे तेरी गड़बड़ी उखाड़ फेंकनी है। इसकी श्रद्धा में तुझे अभी ठिकाना नहीं। सत्य श्रद्धा के पक्ष में भी नहीं, सत्य श्रद्धान का संस्कार भी नहीं। आहाहा! अरेरे! भाई! मुक्तस्वरूप भगवान का अनुभव, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! भावार्थ - **उसके अनुभवने पर मोक्ष होता है, ऐसा घटता है...** ऐसा घटता है। **विरुद्ध तो नहीं।** आहाहा! यह ही है।

'अतः अन्यत् बन्धस्य हेतुः' शुद्धस्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके बिना जो कुछ है शुभक्रियारूप, अशुभक्रियारूप... आहाहा! शुभरागरूप के अशुभरागरूप। **वह सब बन्ध का मार्ग है...** बन्ध का मार्ग कहकर, वह बन्ध है; इसलिए बन्ध का मार्ग है — ऐसा कहेंगे। क्या कहते हैं? देखो! **वह सब बन्ध का मार्ग है, 'यतः स्वयं अपि बन्ध इति' जिस कारण अपने आप भी सर्व ही बन्धरूप है।** राग, ये बन्धस्वरूप ही है; अबन्धस्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे आत्मा मोक्षस्वरूप है तो उसके आश्रय मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है तो यह बराबर है। अब राग और दया, दान, व्रतादि बन्धस्वरूप है। आहाहा! इसलिए बन्ध का कारण है। जैसे ये मोक्षस्वरूप है तो मोक्ष का कारण है। ये बन्धस्वरूप है तो बन्ध का कारण है। आहाहा! ...लालजी! ऐसी बात है। झगड़ा करे। भगवान! ऐसा है। आहाहा!

अनन्त रत्नाकर भगवान आत्मा, उसमें अशुभभाव का तो अभाव है। वह तो निर्विकल्प वस्तु है। आहाहा! निर्विकल्प वस्तु के आश्रय निर्विकल्पता प्रगट होती है। राग तो बन्धस्वरूप है तो इसके आश्रय बन्ध का कारण उत्पन्न होता है, राग उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? गहल-पागल कहते हैं। कितने ही। छोटाभाई! पागल कहें। यह एक लगाई है। अरे! भगवान! सुन तो सही। परमात्मप्रकाश में कहा है, ऐसे धर्मात्मा को दुनिया पागल कहती है। और धर्मात्मा दुनिया को पागल मानता है। परमात्मप्रकाश में

है। आहाहा! कहो, बापू! कहो। आहाहा! समझ में आया?

दो बात सिद्ध की। आत्मस्वरूप शुद्धचैतन्यघन है, उसका वेदन करना, यह मोक्षमार्ग क्यों? कि वस्तु मोक्षस्वरूप है। वस्तु मोक्षस्वरूप है, उसका वेदन मोक्ष का कारण है। अर्थात् राग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का राग, ये बन्धस्वरूप है, बन्धस्वरूप है। आहाहा! है? आहाहा! **वह सब बन्ध का मार्ग है...** क्यों? **कारण अपने आप भी सर्व ही बन्धरूप है।** अपना आप ही राग जो दया, दान के भाव हैं, ये बन्धस्वरूप ही है। भगवान मोक्षस्वरूप है तो राग बन्धस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! कितनों ने तो पहली बार सुनी होगी। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! जिस **कारण अपने आप भी सर्व ही बन्धरूप है।** आहाहा! इस कारण से....

'ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूतिः' तिस कारण पूर्वोक्त चेतनालक्षण, ऐसा है... पहले कहा था न? **'ज्ञानात्मा भवनं'** ये चेतनालक्षण **'स्वं भवनं', 'स्वं भवनं' अपना जीव का सत्त्व... 'स्वं भवनं'** अपने जीव का सत्त्व। आहाहा! अपने जीव का सत्त्व। आहाहा! अनुभूति। आनन्द का स्वाद, ये अपने जीव का सत्व। आहाहा! **मोक्षमार्ग है, निश्चय से प्रत्यक्षपने आस्वाद किया होता हुआ।** मोक्षमार्ग **'विहितं'** सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेवों ने... आहाहा! रागरहित भगवान आत्मा का वेदन करना, वह मोक्षमार्ग है, ऐसा परमात्मा ने फरमाया है **'विहितं'** पहले **'विहितं'** आया था। **'शिवहेतुः विहितं'** १०३। **'ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः'** १०३। अन्तिम पद। यहाँ यह कहा। आहाहा! यहाँ **'ज्ञानात्मा विहितं'** आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप का अनुभव करना, यह विधि कही है। अनुभूति मोक्ष का मार्ग कहा है। आहाहा! दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)